भारतीय पुलिस

उम्मीदों और अभावों के बीच

कमल नयन चौबे

एक न्यायूपर्ण और लोकतांत्रिक समाज की आधारशिला क़ानूनसम्मत शासन से बनती है। इसके लिए आवश्यक निष्पक्ष और प्रभावी आपराधिक न्याय व्यवस्था में पुलिस की केंद्रीय भूमिका होती है। पुलिस राज्य का एक ऐसा अंग है जिससे लोगों का लगातार साबिक़ा पड़ता है। जब भी किसी नागरिक पर संकट आता है तो अमूमन सबसे पहले वह पुलिस स्टेशन (थाना या कोतवाली) से सम्पर्क करता है। पुलिस से अपेक्षा की जाती है कि वह लोगों के जीवन और स्वतंत्रताओं की हिफ़ाज़त करेगी, क़ानून लागू करते हुए समाज में शांति और समरसता बनाए रखेगी।[1] कई संगठनों द्वारा प्रायोजित रपट द *स्टेट्स ऑफ़ पोलिसिंग इन इंडिया रिपोर्ट* (2019) का मुख्य लक्ष्य भारत में पुलिस व्यवस्था से जुड़े और इससे प्रभावित होने वाले सभी लोगों के अनुभवों का अध्ययन करते हुए इस व्यवस्था में सार्थक बदलाव लाने का प्रयास करना है।

---

[1] *स्टेटस ऑफ़ पोलिसिंग इन इंडिया रिपोर्ट 2019* (2019) : 12.
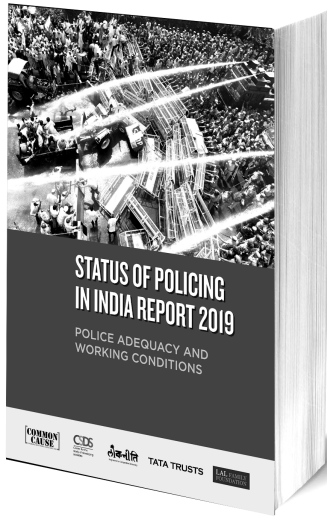
स्टेटस ऑफ़ पोलिसिंग इन इंडिया : पोलिस एडिक्वेसी ऐंड वर्किंग कंडीशंस *(2019)*
कॉमन कॉज़, सीएसडीएस, लोकनीति, टाटा ट्रस्ट्स, लाल फ़ैमिली फाउंडेशंस.
पृष्ठ : 188, मूल्य : विक्रय के लिए नहीं

यह रपट कॉमन कॉज़ संस्था द्वारा भारत में पुलिस व्यवस्था के बारे में जारी अध्ययन का एक भाग है। कॉमन कॉज़ की भूमिका प्रकाश सिंह वर्सेज यूनियन ऑफ़ इंडिया मामले में सह-याचिकाकर्त्ता की थी। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 2006 में अपना निर्णय सुनाया था जिसमें पुलिस व्यवस्था में सुधार के लिए कई आदेश जारी किये गये थे। यह अलग बात है कि अभी भी अदालत के इस फ़ैसले को पूरी तरह लागू नहीं किया गया है। इस अध्ययन में सीएसडीएस-लोकनीति ने भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। असल में, राज्य स्तर पर फ़ील्ड-वर्क का मुख्य काम लोकनीति से जुड़े विभिन्न राज्यों के विद्वानों और अनुसंधानकर्त्ताओं द्वारा ही किया गया है। टाटा ट्रस्ट और लाल फ़ैमिली फाउंडेशन ने इस अध्ययन के लिए आर्थिक सहायता उपलब्ध करायी।

इससे पहले 2018 में भी द *स्टेटस ऑफ़ पोलिसिंग इन इंडिया रिपोर्ट* का एक खण्ड प्रकाशित हो चुका है। जहाँ 2018 की रपट में पुलिस के बारे में आम जनता की समझ और शिकायतों का अध्ययन किया गया है, वहीं मौजूदा अध्ययन (2019) में पुलिसकर्मियों और उनके परिवारों के सदस्यों से पुलिस के काम और चुनौतियों से जुड़े विविध मुद्दों पर बातचीत की गयी है। यह रपट भारतीय पुलिस की कार्य-स्थितियों के बारे में एक अंतर्दृष्टि से युक्त समझ प्रस्तुत करती है, ताकि उसका उपयोग नीति-निर्माण के क्षेत्र में भी हो सके। इसमें पुलिसकर्मियों के काम की स्थितियों, उनके संसाधनों और बुनियादी संरचनाओं, आम लोगों से उनके रोज़-ब-रोज़ के सम्पर्क के स्वरूप और देश में पुलिस तंत्र की अवस्था का विश्लेषण किया गया है।

इस अध्ययन में पुलिसकर्मियों और उनके परिवार के सदस्यों से लिए गये साक्षात्कार को केंद्र में रखते हुए तर्क प्रस्तुत किये गये हैं, किंतु इसमें सीधे तौर पर नीति-निर्माताओं से सिफ़ारिशें नहीं की गयी हैं। प्रस्तावना और निष्कर्ष (या अध्ययन के सारांश) के अतिरिक्त यह अध्ययन सात अध्यायों में बँटा हुआ है। पहले अध्याय में ब्यूरो ऑफ़ पुलिस रिसर्च ऐंड डिवेलपमेंट (बीपीआरडी) तथा नैशनल क्राइम रेकॉर्ड्स ब्यूरो (एनसीआरबी) जैसे सरकारी स्रोतों के आँकड़ों का उपयोग करते हुए विभिन्न राज्यों में पुलिस-संरचना की पर्याप्तता का अध्ययन किया गया है।

दूसरे अध्याय में पुलिसकर्मियों के कार्य की स्थितियों का वर्णन एवं विश्लेषण किया गया है। तीसरे अध्याय में संसाधनों और बुनियादी संरचना पर और चौथे अध्याय में अपराधों की जाँच-पड़ताल और पुलिस की अपराधों को नियंत्रित और हल करने की क्षमता पर ध्यान केंद्रित किया गया है। पाँचवें अध्याय में पुलिस के कार्य पर जेंडर के दृष्टिकोण से विचार किया है, और छठे अध्याय में पुलिस बल के भीतर और हाशियाकृत समूहों के साथ होने वाले व्यवहार का विश्लेषण किया गया है। सातवें अध्याय में पुलिस और आम लोगों के बीच होने वाले टकरावों तथा अपराध और पुलिस हिंसा की घटनाओं के संदर्भ में पुलिसकर्मियों के दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया गया है। इस रपट के आख़िर में परिशिष्ट दिये गये हैं, जिनमें अध्ययन-पद्धति, प्रश्नावली, सर्वेक्षण के आँकड़ों के विश्लेषण के तरीक़े आदि का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत आलेख में इस रपट की अध्ययन-पद्धति और तर्कों का आलोचनात्मक विश्लेषण है।

I

अध्ययन-पद्धति

यह रपट 2018 में लोकनीति-सीएसडीएस के सहयोग से किये गये अध्ययन पर ही आधारित है। 2018 में प्रकाशित पहले अध्ययन में 22 राज्यों के 15,500 उत्तरदाताओं से बातचीत की गयी थी। इसमें नागरिकों के विश्वास और संतुष्टि-स्तर, दुर्बल लोगों से भेदभाव, पुलिस के अत्यंत कठोर बरताव, उसकी बुनियादी संरचना, विविधता, जेलों की हालत और मुक़दमों के निपटान जैसे मसलों पर विचार किया गया था।[2] इस रपट में यह बात सामने आयी कि नागरिकों में जहाँ एक ओर पुलिस के प्रति काफ़ी हद तक भय मौजूद है, वहीं वे पुलिस के काम से बड़े पैमाने पर संतुष्ट भी हैं।[3] 2019 का *स्टेटस ऑफ़ पोलिसिंग इन इंडिया रिपोर्ट* कई मायनों में भारत और दक्षिण एशिया में अपनी तरह का पहला अध्ययन है। इसमें भारत के 21 राज्यों के 105 स्थानों से 11,834 पुलिसकर्मियों का साक्षात्कार किया गया। यह साक्षात्कार एक वस्तुनिष्ठ प्रश्नों की प्रश्नावली के आधार पर किया गया (हालाँकि प्रश्नावली में कुछ खुले प्रश्न भी सम्मिलित किये गये हैं) जिसमें कुल 42 प्रश्न सम्मिलित थे। पुलिसकर्मियों के साथ पुलिस स्टेशन के भीतर या उनके निवास स्थान पर बातचीत की गयी। पुलिसकर्मियों के परिवारों के कुल 10,535 सदस्यों से साक्षात्कार किया गया। इनसे अलग प्रश्नावली के आधार पर बातचीत की गयी, जिसमें उनसे संबंधित व्यक्तिगत सूचनाओं के अतिरिक्त कुल 13 वस्तुनिष्ठ प्रश्न पूछे गये।[4] इस रपट के आख़िर में 'परिशिष्ट' भाग में इन प्रश्नावलियों को दिया गया है, जिससे कोई पाठक इस अध्ययन में पूछे गये प्रश्नों के बार में जानकारी हासिल कर सकता है। इन प्रश्नों में अध्ययन के लक्ष्यों के अनुरूप हर तरह के सवाल सम्मिलित हैं।

अधिकांश राज्यों में पुलिस की बुनियादी संरचना काफ़ी कमज़ोर है, और संसाधनों की कमी के कारण पुलिस के काम पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। कई बार आपातकालीन स्थितियों में गाड़ी या उसमें ईंधन न होने की स्थिति में पुलिसकर्मियों को अपनी जेब से ख़र्च करना पड़ता है। पुलिस थाने में आवश्यकता से कम नियुक्तियाँ होने के कारण भी पुलिस के काम में बाधा आती है। पुलिस की गतिशीलता और पुलिसकर्मियों की नियुक्ति के संदर्भ में राजस्थान, ओडीशा और उत्तराखण्ड की स्थिति तुलनात्मक रूप से ज़्यादा बुरी है।

इस अध्ययन में निम्नलिखित राज्यों को सम्मिलित किया गया : आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, छत्तीसगढ़, गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, झारखण्ड, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, नागालैंड, ओडीशा, पंजाब, राजस्थान, तेलंगाना, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, पश्चिम बंगाल और दिल्ली। अध्ययन की अवधि फ़रवरी से अप्रैल, 2019 तक थी। इसका एक लक्ष्य पुलिस के बारे में राज्यवार अध्ययन करना था। इसलिए पहले से ही यह तय किया गया कि अध्ययन में 21 राज्यों को उनके आकार के आधार पर सम्मिलित किया जाएगा। राज्यों के भीतर और विभिन्न राज्यों के बीच तुलना करने के लिए यह तय किया गया कि राज्यों का आकार और उनकी जनसंख्या चाहे कुछ भी हो, प्रत्येक राज्य में 600 साक्षात्कार लिए जाएँगे।[5]

[2] *स्टेटस ऑफ़ पोलिसिंग इन इंडिया रिपोर्ट* (2018).

[3] देखें, *स्टेटस ऑफ़ पोलिसिंग इन इंडिया रिपोर्ट* (2018); साथ ही देखें, *स्टेटस ऑफ़ पोलिसिंग इन इंडिया रिपोर्ट* (2019) : 149.

[4] *स्टेटस ऑफ़ पोलिसिंग इन इंडिया रिपोर्ट* (2019) : 158-167.

[5] हालाँकि इस रपट में एक तालिका के माध्यम से बताया गया कि चुने गये अधिकांश राज्यों में सैंपल की संख्या 600 से कम ही रही, सिर्फ़ दिल्ली में निर्धारित संख्या से ज़्यादा 673 लोगों का साक्षात्कार लिया गया, वही : 156.

विभिन्न राज्यों में साक्षात्कार के स्थानों का चयन उद्देश्यपूर्ण विविधतापूर्ण सैम्पलिंग (परपज़िव हेटरोजीनस सैम्पलिंग) का उपयोग किया गया है। इसके माध्यम से पुलिस की सामाजिक विविधता, भौगोलिक प्रसार और प्रशासन के विविध आयामों की समझ बनाने की कोशिश की गयी है। प्रत्येक राज्य में पाँच स्थानों को इस तरह चुना गया जिससे दो ग्रामीण क्षेत्रों की जनसंख्या और दो शहरी क्षेत्रों की जनसंख्या में पुलिस के कार्य से संबंधित हों, तथा एक स्थान राजधानी या मेट्रोपॉलिटन शहरों में पुलिस के काम की तस्वीर पेश करे। इन स्थानों के चयन में राज्य के भौगोलिक आकार का भी ध्यान में रखा गया। उन स्थानों को वरीयता दी गयी जहाँ अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या ज़्यादा थी।

सैम्पलिंग के दूसरे और आख़िरी चरण में उत्तरदाताओं का चयन किया गया। प्रत्येक स्थान से कोटा सैम्पलिंग पद्धति का उपयोग करते हुए 120 उत्तरदाताओं का चयन किया जाना था। इस पूरी प्रक्रिया में यह सुनिश्चित किया गया कि हर पाँचवाँ उत्तरदाता एक महिला हो, तथा पाँच उत्तरदाताओं में से कम-से-कम चार कांस्टेबल या हेड कांस्टेबल स्तर के हों। पुलिसकर्मियों का साक्षात्कार उन्हें आबंटित घरों में या पुलिस स्टेशन में लिया गया। पुलिसकर्मियों के परिवार के सदस्यों की सैम्पलिंग के लिए भी इसी प्रक्रिया को अपनाया गया। सिर्फ़ एक अंतर यह था कि जहाँ पुलिसकर्मियों के चयन में कोटा सैम्पलिंग का सहारा लिया गया था, वहीं परिवार के सदस्यों के चयन के लिए सुविधा सैम्पलिंग (कॉनविनिएंस सैम्पलिंग) का सहारा लिया गया। इसके माध्यम से पुलिसकर्मियों के परिवार के सदस्यों की पहचान करके उनका साक्षात्कार लिया गया। इनका साक्षात्कार भी पुलिसकर्मियों को आबंटित निवास स्थानों पर ही लिया गया।

इस अध्ययन के मुख्य लक्ष्य अर्थात् पुलिसकर्मियों की कार्य-स्थितियों और अपने कर्त्तव्य-निर्वहन में उनके सामने आने वाली समस्याओं को ध्यान में रखते हुए प्रश्नावली तैयार की गयी। अधिकांश प्रश्न बंद वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के रूप में थे, लेकिन कुछ प्रश्न खुले प्रश्नों के रूप में भी थे, ताकि उत्तरदाता की स्वत:स्फ़ूर्त भावनाओं को जाना जा सके।[6] आरम्भ में प्रश्नावली को जाँचने के लिए एक आरम्भिक फ़ील्डवर्क किया गया। प्रश्नावली पर सहमति बन जाने के बाद इसे दस भाषाओं (असमिया, बांग्ला, हिंदी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी और तेलुगू) में अनूदित किया गया। फ़ील्ड में जाँच करने वालों के लिए दो दिवसीय कार्यशाला का भी आयोजन किया गया। मुख्य रूप से देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में समाज-विज्ञान का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों ने ही फ़ील्ड में जा कर पुलिसकर्मियों और उनके परिवार के सदस्यों का साक्षात्कार लेने का काम किया।

कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि इस अध्ययन की बेहद व्यवस्थित तरीक़े से तैयारी की गयी और उसके बाद अध्ययन को आगे बढ़ाया गया। रपट में दावा किया गया है कि 'हमने छिपी हुई प्रवृत्तियों को सामने लाने के लिए आँकड़ों का गहन विश्लेषण किया है, लेकिन हमने इसके साथ अनुपूरक के रूप में पुलिसकर्मियों और उनके परिवार के सदस्यों के साथ आमने-सामने बैठकर लिए गये साक्षात्कार को सम्मिलित किया है। इस संदर्भ में पुलिस विभाग के सबसे निचले स्तर पर काम करने वाले और विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमियों से जुड़े पुरुषों और महिलाओं को शामिल करने पर विशेष ध्यान दिया गया है।'[7] इस अध्ययन में यह दावा भी किया गया है कि पहली बार अखिल भारतीय स्तर पुलिसकर्मियों और उनके परिवार के सदस्यों के विचारों का अध्ययन हुआ है, और एक निश्चित अवधि में विभिन्न राज्यों के प्रदर्शनों में गिरावट या सुधार के संकेतकों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

---

[6] वही : 157.

[7] *स्टेटस ऑफ़ पोलिसिंग इन इंडिया रिपोर्ट* (2019) : 12; इस अध्ययन में फ़ील्ड-वर्क (पुलिसकर्मियों से साक्षात्कार) से जुड़ी परेशानियों को भी रेखांकित किया गया है. लेकिन रिपोर्ट के अनुसार, पुलिस सुधारों के लिए समर्पित संस्था इंडियन पुलिस फाउंडेशन के पत्रों के कारण अधिकांश स्थानों पर अध्ययनकर्त्ताओं को पुलिस का सहयोग मिला. तमिलनाडु में पुलिस का तंत्र काफ़ी गूढ़ और संदेहास्पद क़िस्म का है, इसलिए अध्ययनकर्त्ताओं को वहाँ अपना अध्ययन पूरी करने में दिक़्क़त हुई. बहरहाल, रपट में यह उम्मीद जताई गयी है कि जल्द ही वहाँ का अध्ययन भी पूरा हो जाएगा और उसके निष्कर्षों को 'ऑन लाइन' उपलब्ध कराया जाएगा. वही : 13.

II

पुलिस : कमज़ोर बुनियादी संरचना तथा अपराध की जाँच संबंधी चुनौतियाँ

इस अध्ययन में ब्यूरो ऑफ़ पुलिस रिसर्च ऐंड डिवेलपमेंट (बीपीआरडी) और नैशनल क्राइम रेकार्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के 2007 से 2016 के बीच की रपटों का अध्ययन किया गया है। इससे यह बात सामने आयी कि नागालैंड के अलावा अध्ययन के लिए चुने गये सभी राज्यों में स्वीकृत संख्या से कम पुलिसकर्मी काम कर रहे थे। सरकारी आँकड़े इस बात की ओर संकेत करते हैं कि राज्यों ने पुलिस विभाग को पर्याप्त संसाधन नहीं दिये हैं, और न ही इनकी क्षमता को बढ़ाने का गम्भीर प्रयास किया गया है। संचार और परिवहन जैसी बुनियादी संरचनाओं का आबंटन भी बहुत ख़राब है। इन सरकारी आँकड़ों से यह बात भी सामने आती है कि अधिकांश राज्य अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित पदों को भरने में नाकाम रहे हैं। इसके कारण पुलिस बल में इनका प्रतिनिधित्व कम है।[8]

इस अध्ययन से इस बात की पुष्टि होती है कि देश के अधिकांश राज्यों में पुलिस की बुनियादी संरचना काफ़ी कमज़ोर है, और संसाधनों की इस कमी के कारण पुलिस के काम पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। कई बार आपातकालीन स्थितियों में गाड़ी या उसमें ईंधन न होने की स्थिति में पुलिसकर्मियों को अपनी जेब से ख़र्च करना पड़ता है। पुलिस थाने में आवश्यकता से कम नियुक्तियाँ होने के कारण भी पुलिस के काम में बाधा आती है। पुलिस की गतिशीलता और पुलिसकर्मियों की नियुक्ति के संदर्भ में राजस्थान, ओडीशा और उत्तराखण्ड की स्थिति तुलनात्मक रूप से ज़्यादा बुरी है। वहीं, पुलिस की बुनियादी संरचना के संदर्भ में पश्चिम बंगाल, गुजरात और पंजाब का प्रदर्शन काफ़ी अच्छा है। इस अध्ययन के मुताबिक़ दो-तिहाई से ज़्यादा पुलिसकर्मियों ने बताया कि उनके पास अच्छा कम्प्यूटर तो होता है, लेकिन इससे ज़्यादा अच्छी तकनीक मसलन, क्राइम ऐंड क्रिमिनल ट्रैकिंग नेटवर्क सिस्टम, फ़ोरेंसिक तकनीक आदि रखने वाले थानों की संख्या आधी या उससे भी कम है। मसलन, सिर्फ़ एक-चौथाई पुलिसकर्मियों ने यह कहा कि उनके थाने में फ़ोरेंसिक तकनीक हमेशा मौजूद होती है। पुलिस के तीन में से दो पुलिसकर्मियों ने ही यह कहा कि उन्होंने कभी फ़ोरेंसिक तकनीक का प्रशिक्षण लिया है।[9]

---

[8] ग़ौरतलब है कि सरकारी आँकड़ों से आईपीएस स्तर पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों और पुलिस बल में मुस्लिमों के अनुपात का पता नहीं चलता, इसलिए इस विश्लेषण से पूरी तस्वीर सामने नहीं आ पाती है.

[9] वही : 151; साथ ही देखें : 63-78.

भारत के विभिन्न राज्यों में पुलिस के कार्य की स्थिति काफ़ी कठिन है। औसतन एक पुलिसकर्मी दिन में 14 घंटे काम करता है, और उन्हें साप्ताहिक अवकाश मिलने की सम्भावना सिर्फ़ 50 प्रतिशत ही होती है। पंजाब और ओडीशा के पुलिसकर्मियों ने बताया कि वे प्रतिदिन औसतन 17-18 घंटे काम करते हैं। महाराष्ट्र एकमात्र राज्य है जहाँ पुलिसकर्मियों को साप्ताहिक छुट्टी मिलती है, वहीं ओडीशा और छत्तीसगढ़ में तक़रीबन 90 प्रतिशत पुलिसकर्मियों के अनुसार उन्हें कोई साप्ताहिक छुट्टी नहीं मिलती। जिन पुलिसकर्मियों से बात की गयी, उनमें से आधे से ज़्यादा पुलिसकर्मियों का कहना था कि वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों द्वारा अपने कनिष्ठों के साथ समानता का व्यवहार नहीं किया जाता है। कई बार वरिष्ठ अधिकारी उनसे अपना व्यक्तिगत / घर का काम करने के लिए भी कहते हैं। बीस प्रतिशत पुलिसकर्मियों ने यह भी कहा कि वरिष्ठ अधिकारी अपने अधीनस्थ / कनिष्ठ अधिकारियों से बातचीत करते हुए ख़राब भाषा का इस्तेमाल करते हैं। चार में से तीन कांस्टेबल स्तर के पुलिसकर्मियों ने यह कहा कि उन्हें अपने काम में किसी तरह की स्वायत्तता हासिल नहीं है। पुलिसकर्मियों के परिवार के सदस्यों ने भी उनके अत्यधिक और तनावपूर्ण काम का उल्लेख किया। पुलिसकर्मियों ने इस बात पर बल दिया कि अत्यधिक काम के दबाव के कारण वे अपने परिवार को समय नहीं दे पाते हैं, और काम की नकारात्मक स्थितियों के कारण उनकी क्षमता भी प्रभावित होती है।[10]

अपराध की जाँच-पड़ताल करना पुलिस का सबसे बुनियादी काम है। इस संदर्भ में रोचक तथ्य यह है कि इस अध्ययन में जितने पुलिसकर्मियों ने यह कहा कि अपराध में कमी आयी है, तक़रीबन उतने ही पुलिसकर्मियों ने अपराध में वृद्धि होने की बात भी रेखांकित की।[11] अधिकांश पुलिसकर्मी मानते हैं कि बेरोज़गारी और शिक्षा का अभाव अपराध के मुख्य कारण हैं। पुलिसकर्मियों ने स्वीकार किया कि सीसीटीवी और स्ट्रीट लाइट लगने से अपराध नियंत्रण में सुविधा होती है, लेकिन उन्होंने इस बात पर बल दिया कि पुलिसकर्मियों और उनके द्वारा गश्त में वृद्धि करके अपराध में नियंत्रण किया जा सकता है। 38 प्रतिशत पुलिसकर्मियों का मानना है कि अपराध की जाँच में राजनीतिक हस्तक्षेप सबसे प्रमुख बाधा होता है। यदि वे राजनीतिक दबाव के आगे नहीं झुकते हैं, तो अमूमन उनका तबादला कर दिया जाता है। निश्चित रूप से, काम की नकारात्मक स्थितियों के अतिरिक्त इन बाहरी दबावों के कारण भी पुलिस प्रणाली काफ़ी कमज़ोर हो जाती है।[12] ग़ौरतलब है कि प्रकाश सिंह वाले मुक़दमे में सर्वोच्च न्यायालय ने पुलिस को इन दबावों से मुक्त करने के लिए प्रभावकारी क़दम उठाने के निर्देश दिये थे, किंतु इस दिशा में कोई ख़ास प्रगति नहीं हुई।

III

पुलिस व्यवस्था और महिला पुलिसकर्मी

पुलिस में काम करने वाले पुरुषों और महिलाओं— दोनों के लिए ही काम की स्थितियाँ अत्यंत कठिन हैं। लेकिन महिलाओं को स्त्री-द्वेषी माहौल में काम करना पड़ता है, इसलिए उनका संघर्ष ज़्यादा बढ़ जाता है। इस अध्ययन से यह बात सामने आयी कि पुलिस व्यवस्था के अंदर काम करने वाली महिलाओं के ख़िलाफ़ एक पूर्वग्रह होता है। चार में से एक पुरुष पुलिसकर्मी ने अपनी महिला सहकर्मी के ख़िलाफ़ पूर्वग्रहपूर्ण विचार व्यक्त किये। यह स्थिति बिहार और कर्णाटक में ज़्यादा गम्भीर थी, जहाँ तक़रीबन 60 प्रतिशत पुलिसकर्मियों ने इस तरह के अत्यधिक पूर्वग्रह का प्रदर्शन किया। दो में से एक (अर्थात् 50 प्रतिशत) महिला पुलिसकर्मियों ने कहा कि पुरुष पुलिस और महिला पुलिस के साथ पूरी तरह समान बर्ताव नहीं किया जाता है।[13] अमूमन महिला पुलिसकर्मियों को थाने के भीतर रजिस्टर सँभालने या डेटा (आँकड़ों) भरने का काम दिया जाता है। वहीं आम तौर पर, पुरुष पुलिसकर्मियों को बाहर का काम— जाँच-पड़ताल, पेट्रोलिंग तथा क़ानून और व्यवस्था

[10] वही : 151; साथ ही देखें : 44.
[11] देखें, वही : 80, 91.
[12] वही : 152.
[13] वही : 152.

से जुड़े काम दिये जाते हैं। पाँच में से एक (अर्थात् 20 फ़ीसद) महिला पुलिसकर्मियों ने कहा कि पुलिस स्टेशन में महिलाओं के लिए अलग से शौचालय नहीं हैं। चार में से एक (अर्थात् 25 प्रतिशत) महिला पुलिसकर्मी ने बताया कि उनके थाने में कोई यौन उत्पीड़न समिति नहीं है।[14]

पुलिसकर्मियों को कई बार जेंडर संवेदनशील बनाने के लिए अलग से ट्रेनिंग दी जाती है। हालाँकि यह अपने–आप में एक अलग मसला है कि इस तरह के प्रशिक्षण का स्तर क्या होता है। ज़्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बड़ी संख्या में पुलिसकर्मियों ने यह स्वीकार किया कि उन्होंने कभी भी इस तरह की कोई ट्रेनिंग नहीं ली। मसलन, नागालैंड, गुजरात और बिहार के चार में से एक पुलिसकर्मी ने यह स्वीकार किया कि उन्होंने कभी इस तरह का कोई प्रशिक्षण हासिल नहीं किया। असल में, इस तरह के प्रशिक्षण के अभाव के कारण कई बार पुलिसकर्मी किसी विषय पर पहले से चली आ रही रूढ़िबद्ध मान्यताओं के अनुसार ही विचार करते हैं। मसलन, इस अध्ययन में आठ प्रतिशत पुलिसकर्मियों (पुरुष और महिला— दोनों) ने कहा कि ट्रांसजेंडर लोगों में स्वाभाविक रूप से अपराध करने की प्रवृत्ति होती है।[15] इसी तरह, 20 प्रतिशत पुलिसकर्मियों के अनुसार जेंडर आधारित हिंसा की शिकायतें बड़े पैमाने पर झूठी और पूर्वग्रह से ग्रसित होती हैं। हक़ीक़त यह है कि अभी भी लैंगिक हिंसा के 99 प्रतिशत मामलों की शिकायत दर्ज नहीं की जाती है।[16] ऐसे में, जेंडर आधारित हिंसा से पीड़ित लोगों के ख़िलाफ़ पुलिस बल के रवैये पर गम्भीर प्रश्न खड़े होते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि मोटे तौर पर, भारतीय पुलिस का तंत्र अपनी महिला कर्मचारियों के लिए सकारात्मक वातावरण मुहैया नहीं कराता।

IV

पुलिस, समाज और आम जनता से सम्पर्क

इस अध्ययन से यह बात सामने आती है कि भारतीय समाज की तरह भारतीय पुलिस व्यवस्था में भी जाति आधारित विभाजन मौजूद है, और इसके द्वारा आम लोगों के साथ किये जाने वाले व्यवहार में भी जाति–विभाजन का स्पष्ट प्रभाव सामने आता है। आधे से भी ज़्यादा पुलिसकर्मियों ने स्वीकार किया कि अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति के लोगों के साथ पुलिसकर्मियों का व्यवहार अन्य समूहों के लोगों की तरह नहीं होता है। विशेष रूप से, तेलंगाना, कर्नाटक और महाराष्ट्र में अनुसूचित जनजाति के लोगों के साथ असमान व्यवहार किया जाता है, वहीं तेलंगाना, पंजाब और महाराष्ट्र में अनुसूचित जाति के लोगों के साथ असमान व्यवहार की बात सामने आयी। आधे से ज़्यादा पुलिसकर्मियों ने स्वीकार किया कि उन्होंने सिर्फ़ नौकरी में आने के समय ही जाति–संवेदनशीलता का प्रशिक्षण लिया था। जिन पुलिसकर्मियों का साक्षात्कार लिया गया, उनमें से पाँच में से एक (अर्थात् 20 प्रतिशत) ने यह कहा कि उनका यह अनुभव है कि अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति उत्पीड़न निषेध अधिनियम के अंतर्गत दर्ज मुक़दमे अमूमन झूठे और पूर्वग्रह–ग्रस्त होते हैं।[17] इसलिए ऐसा लगता है कि दलितों और आदिवासियों के प्रति पुलिस का रवैया व्यापक समाज में इन समुदायों के प्रति मौजूद रवैये को ही परिलक्षित करता है। इसके अलावा, प्रत्येक तीन में से एक पुलिसकर्मी ने यह विचार व्यक्त किया कि पुलिस बल के भीतर धार्मिक अल्पसंख्यक समूहों के सदस्यों के साथ समान व्यवहार नहीं किया जाता है। ऐसा मानने वालों में सिख पुलिसकर्मियों की संख्या सबसे ज़्यादा थी।[18]

जिन पुलिसकर्मियों से बातचीत की गयी उनमें से 14 प्रतिशत ने कहा कि मुसलमानों में स्वाभाविक रूप से अपराध करने की प्रवृत्ति होती है। उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश, बिहार और झारखण्ड जैसे हिंदी प्रदेशों में ऐसा

[14] वही : 93.
[15] वही : 93.
[16] वही : 152.
[17] वही : 152.
[18] वही : 111.

आधे से ज़्यादा पुलिसकर्मियों ने स्वीकार किया कि उन्होंने सिर्फ़ नौकरी में आने के समय ही जाति-संवेदनशीलता का प्रशिक्षण लिया था। पाँच में से एक (अर्थात् 20 प्रतिशत) ने यह कहा कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति उत्पीड़न निषेध अधिनियम के मुक़दमें अमूमन झूठे और पूर्वग्रह-ग्रस्त होते हैं। ... दलितों और आदिवासियों के प्रति पुलिस का रवैया व्यापक समाज में इन समुदायों के प्रति मौजूद रवैये को ही परिलक्षित करता है। ... तीन में से एक पुलिसकर्मी ने विचार व्यक्त किया कि पुलिस बल के भीतर धार्मिक अल्पसंख्यकों के साथ समान व्यवहार नहीं किया जाता है।

मानने वाले पुलिसकर्मियों का अनुपात ज़्यादा था। सिर्फ़ छह प्रतिशत पुलिसकर्मियों ने कहा कि उच्च जाति के हिंदुओं में स्वाभाविक रूप से अपराध करने की प्रवृत्ति होती है। 24 प्रतिशत पुलिसकर्मियों में यह मानने की प्रवृत्ति दिखाई दी कि दूसरे राज्यों से आने वाले प्रवासी आपराधिक गतिविधियों की ओर ज़्यादा झुके होते हैं। महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश और छत्तीसगढ़ में ऐसा मानने वाले पुलिसकर्मियों का अनुपात तुलनात्मक रूप से ज़्यादा था।[19] पाँच में से दो (अर्थात् 40 प्रतिशत) पुलिसकर्मियों ने कहा कि 16 से 18 वर्ष की उम्र के बच्चे अगर क़ानून तोड़ने का काम करते हैं तो उनके साथ वयस्क अपराधियों की तरह ही सलूक़ किया जाना चाहिए। वहीं, 35 प्रतिशत पुलिसकर्मियों ने यह कहा कि गोहत्या के मामले में भीड़ द्वारा दोषी को सज़ा देना ठीक है।[20] अध्ययन के इन निष्कर्षों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक संस्था के रूप में पुलिस विविध समूहों और समुदायों को समान स्थान उपलब्ध कराने में नाकाम रही है। इसमें हाशिये पर पड़े समूहों के प्रति एक मज़बूत पूर्वग्रह मौजूद है।

अपराध के बारे में पुलिस में शिकायत दर्ज कराना और लोगों में इस बारे में जागरूकता और सहजता होना किसी भी लोकतांत्रिक समाज के लिए अच्छा संकेत माना जाता है। लेकिन इस अध्ययन से यह बात सामने आयी कि एफ़आईआर या प्राथमिकी के बारे में पुलिसकर्मियों की सोच इससे अलग है। आधे से ज़्यादा पुलिसकर्मियों ने कहा कि एफ़आईआर की संख्या में वृद्धि होने से यह संकेत मिलता है कि उनके अधिकार-क्षेत्र में अपराध में बढ़ोतरी हुई है। सिर्फ़ केरल और ओडीशा में तक़रीबन 70 प्रतिशत पुलिसकर्मियों ने एफ़आईआर दर्ज होने को नकारात्मक संकेत नहीं माना। यह भी रोचक है कि पाँच में से तीन पुलिसकर्मियों ने यह विचार व्यक्त किया कि एफ़आईआर दर्ज होने से पहले कुछ प्राथमिक जाँच पड़ताल होनी चाहिए; लेकिन इसके साथ ही तक़रीबन 60 प्रतिशत पुलिसकर्मियों ने यह भी स्वीकार किया कि पुलिस थाने में जितनी संख्या में शिकायत दर्ज कराई जाती है, समाज में उससे कहीं ज़्यादा संख्या में अपराध हो रहे हैं। इन्होंने यह भी माना कि इसका एक बड़ा कारण यह है कि आम लोग अमूमन पुलिस से भयभीत रहते हैं। पाँच में से एक पुलिसकर्मी ने ख़ुद यह कहा कि वह अपनी बेटियों को यह सुझाव देगा कि वे अपने थाने के अधिकार-क्षेत्र से बाहर अपराध की

[19] (2018) के अध्ययन में आम लोगों से बातचीत की गयी थी. इसमें 65 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि हिंदू और सिख अमूमन शांतिप्रिय होते हैं, वहीं मुसलमानों के बारे में ऐसा मानने वालों की संख्या सिर्फ़ 42 प्रतिशत थी. निश्चित रूप से, इस मामले में पुलिसकर्मियों की सोच व्यापक समाज की सोच को ही परिलक्षित कर रही थी, वही : 152.

[20] वही : 111.

रपट दर्ज न कराएँ।[21] लोगों में पुलिस के प्रति भय की स्वीकारोक्ति के बावजूद पुलिसकर्मियों ने अमूमन बड़े पैमाने पर हिंसा को सही ठहराया। विशेष रूप से, कर्णाटक, छत्तीसगढ़, नागालैंड और बिहार के पुलिसकर्मियों में ऐसा मानने की प्रवृत्ति ज़्यादा थी। इसके अलावा, देश के स्तर पर चार में से एक पुलिसकर्मी ने कहा कि क़ानूनी कार्रवाई से ज़्यादा अच्छा है कि ख़तरनाक अपराधी की हत्या कर दी जाए।[22] पाँच में से चार पुलिसकर्मियों का मानना था कि अपराधियों से इक़बालिया बयान दिलवाने के लिए पुलिस द्वारा उनकी पिटाई करने में कुछ भी ग़लत नहीं है।[23]

निश्चित रूप से, न तो पुलिस की आंतरिक संरचना संतोषजनक मानी जा सकती है, और न ही आम लोगों उसके व्यवहार को आदर्श का दर्जा दिया जा सकता है। पुलिस के भीतर विभिन्न समूहों और समुदायों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है। विभिन्न पुलिसकर्मियों के भीतर जाति, सम्प्रदाय, मुज़रिमों के साथ व्यवहार, क़ानूनी प्रक्रिया में आस्था आदि के संदर्भ में ऐसे विचार हैं, जिन्हें लोकतांत्रिक समाज के लिए ही नहीं, किसी भी स्वस्थ समाज के लिए आदर्श नहीं माना जा सकता।

V
आलोचना

यह अध्ययन पुलिसकर्मियों की स्थिति के संदर्भ में कई पहलुओं को सामने लाता है, किंतु इसकी कुछ बुनियादी सीमाएँ भी हैं।

पहला, इस अध्ययन में देश के 21 राज्यों के पुलिसकर्मियों और उनके परिवारों के साथ बातचीत करने के लिए एक ही तरह की पद्धति अपनाई गयी है। जबकि हक़ीक़त यह है कि देश के विभिन्न राज्यों की स्थिति एक जैसी नहीं है। बहुत से राज्य विविध समूहों द्वारा की जाने वाली विद्रोही गतिविधियों का सामना कर रहे हैं। मसलन, छत्तीसगढ़ के माओवादी आंदोलन को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। यहाँ के पुलिसकर्मियों को ज़्यादा गहरी चुनौतियों और समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसलिए, ऐसे राज्यों में पुलिस की कार्यप्रणाली का अध्ययन करने के लिए अलग तरह की पद्धति अपनाई जानी चाहिए। ऐसा इसलिए आवश्यक है क्योंकि इस अध्ययन में मूलतः बंद वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का सहारा लिया गया था। यह कहना ग़लत नहीं होगा कि इस अध्ययन में पुलिस बल की कार्यप्रणाली से जुड़ी विविध स्थितियों और विशिष्टताओं का आकलन पूरी तरह आश्वस्त नहीं करता।

दूसरा, इस अध्ययन में पुलिस के काम में राजनीतिक दखलंदाज़ी का विश्लेषण किया गया है, किंतु ख़ुद पुलिस द्वारा या पुलिस और प्रशासन के अन्य महकमों और छुटभैये या बड़े नेताओं के गठजोड़ से फलने-फूलने वाले भ्रष्टाचार के बार में यह रपट पूरी तरह ख़ामोश है। इस संदर्भ में पुलिसकर्मियों से किसी प्रकार का प्रश्न नहीं पूछा गया। मसलन, दिल्ली (और अमूमन हर छोटे-बड़े शहर में) रेहड़ी-पटरी वालों से पुलिस द्वारा हर महीने कुछ न कुछ राशि वसूली जाती है। यह एक तरह का व्यवस्थित भ्रष्टाचार होता है, जिसमें हर स्तर के अधिकारियों और नेताओं आदि का हिस्सा होता है। इस तरह के भ्रष्टाचार और उसमें पुलिसकर्मियों की संलिप्तता का विश्लेषण रपट को और ज़्यादा उपयोगी बना सकता था।

तीसरा, इस अध्ययन से जम्मू और कश्मीर जैसे कुछ राज्यों को बाहर रखा गया है, लेकिन रपट में कहीं भी स्पष्ट नहीं किया गया है कि ऐसे राज्यों को अध्ययन में क्यों शामिल नहीं किया गया।

चौथा, यद्यपि इस अध्ययन के आरम्भ में कुछ खुले प्रश्नों के होने की बात कही गयी है, लेकिन अमूमन आँकड़ों के माध्यम से ही बातें सामने आती हैं। लेकिन, अगर कुछ पुलिसकर्मियों के अनुभवों को वृत्तांत के

[21] वही : 153.

[22] वही : 153; साथ ही देखें : 131.

[23] वही : 131.

रूप में प्रस्तुत किया जाता, तो इस रपट में कई अनछुए पहलू भी उभर सकते थे। इस रपट में पुलिसकर्मियों के पारिवारिक सदस्यों के अनुभवों को ज़्यादा स्थान नहीं दिया गया है।

फिर भी, यह अध्ययन भारत में पुलिसकर्मियों के सोच और समझ को समझने के लिए एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ है। यह हमें पुलिस की आवश्यकताओं, उनकी चुनौतियों और परेशानियों के बारे में एक गहरी समझ प्रदान करती है।

VI
निष्कर्ष

भारत एक ऐसी आर्थिक महाशक्ति होने की आकांक्षा रखता है जहाँ इसके सभी नागरिक समृद्ध हों। लेकिन यह भी सच है कि एक ऐसी आपराधिक न्याय व्यवस्था में जिसमें पुलिस आम जनता और लोगों के बजाय सत्ताधारी लोगों के लिए काम करती हो, तो इसे भारत के लोकतंत्र की सुरक्षा का प्रमाण नहीं माना जा सकता। ऐसे में, भारत के एक आर्थिक महाशक्ति बनने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पुलिसकर्मियों का काम इतना कठिन और संवेदनशील है कि इन्हें न सिर्फ़ ठोस और आधुनिक बुनियादी संरचना उपलब्ध कराई जानी चाहिए, बल्कि इसके साथ ही पुलिसकर्मियों को संवेदनशील और सुप्रशिक्षित करने पर भी ध्यान केंद्रित करना चाहिए। इस बात की आवश्यकता है कि पुलिसकर्मियों की क्षमता विकसित की जाए, ताकि वे न सिर्फ़ प्रभावी तरीक़े से क़ानून की रक्षा करें बल्कि आम जनता के हर तबक़े से उनका व्यवहार भी संयमित और सद्भावयुक्त हो। साथ ही, पुलिस व्यवस्था में समाज के सभी तबक़ों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

भारत में पुलिस सुधारों के संदर्भ में बहुत से आयोग गठित हुए, लेकिन इनकी रपटों और सिफ़ारिशों को लागू करने पर कोई ख़ास ध्यान नहीं दिया गया। इस संदर्भ में प्रकाश सिंह बनाम भारतीय संघ में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को काफ़ी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इस फ़ैसले में अदालत ने पुलिस के कार्यों को राजनीतिक नियंत्रण से मुक्त रखने के लिए दिशा-निर्देश जारी किये थे। असल में, भारत में पुलिस सुधारों के बारे में पारम्परिक रूप से दो अतिवादी दृष्टिकोण रहे हैं। एक ओर, दमित लोगों की तरफ़ से हिंसा पर पुलिस के एकाधिकार को सीमित करने और राज्य द्वारा इसकी शक्तियों के दुरुपयोग को ख़त्म करने की बात कही जाती रही है; वहीं, दूसरी ओर, एक संस्था के रूप में पुलिस की पेशेवर स्वायत्तता को क़ायम रखने, विशेष रूप से इसे राजनीतिक वर्ग के दबाव से मुक्त रखने और इसके काम की स्थितियों को बेहतर बनाने पर ज़ोर दिया जाता रहा है। ज़ाहिर है कि इन दोनों ही दिशाओं के आगे बढ़ने और इनके बीच संतुलन क़ायम करने की आवश्यकता है। पुलिस बल को इस तरह प्रशिक्षित किया जाना चाहिए कि वह समाज के हर वर्ग और समूह के प्रति समान दृष्टि रखे, पुलिस बल के भीतर सभी सदस्यों (कनिष्ठ / वरिष्ठ या पुरुष / महिला) के साथ गरिमापूर्ण व्यवहार हो और वह हर तरह के बाहरी दबावों से मुक्त होकर कार्य कर सके।

संदर्भ

स्टेटस ऑफ़ पोलिसिंग इन इंडिया : पोलिस एडिक्वेसी ऐंड वर्किंग कंडीशंस 2019 (2019), कॉमन कॉज़, सीएसडीएस, लोकनीति, टाटा ट्रस्ट्स, लाल फ़ैमिली फाउंडेशंस.

सामयिक विमर्श

हिंदू-एकता बनाम ज्ञान की राजनीति

अभय कुमार दुबे